जगदीश पांडे

बनाम

बीबर और अन्य की चांसलर यूनिवर्सिटी

17 अगस्त 1961

[क एन. वांचू, मुख्य न्यायमूर्ति, आर. एस. बछावत, रामास्वामी, जी.के. मित्तर और के.एस. हेगड़े, न्यायमूर्तिगण]

बिहार राज्य विश्वविद्यालय [बिहार, भागलपुर और रांची विश्वविद्यालय] [संशोधन] 1962 का अधिनियम 13, धारा. 4-क्या, भेदभावपूर्ण और कला का उल्लंघन है। संविधान के 14-व्याख्याता की तीसरी श्रेणी की मास्टर डिग्री की योग्यता को विश्वविद्यालय क़ानून द्वारा द्वितीय श्रेणी की डिग्री के रूप में न्यूनतम योग्यता माना जाता है-क्या ऐसा समझा जाना जारी रहेगा। उन्हें प्रिंसिपल पद पर नियुक्त होने का अधिकार देता है जिसके लिए द्वितीय श्रेणी की डिग्री की भी आवश्यकता होती है।

अपीलकर्ता को 1952 में बिहार विश्वविद्यालय से संबद्ध एक गैर-सरकारी कॉलेज के व्याख्याता के रूप में नियुक्त किया गया था और बाद में एक अन्य कॉलेज के प्राचार्य के रूप में नियुक्त किया गया था, इन दोनों नियुक्तियों को विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित किया गया था।

बिहार राज्य विश्वविद्यालय [बिहार, भागलपुर और रांची विश्वविद्यालय] [संशोधन] अधिनियम 13, 1962 अप्रैल 19आर2, एस में लागू हुआ। जिनमें से 4 में प्रावधान है कि 27 नवंबर, 1961 के बाद और 1 मार्च, 1962 से पहले विश्वविद्यालय से संबद्ध राज्य सरकार से संबंधित कॉलेज के किसी भी शिक्षक की प्रत्येक नियुक्ति, बर्खास्तगी आदि ऐसे आदेश के अधीन होगी। विश्वविद्यालय सेवा आयोग की अनुशंसा पर विश्वविद्यालय के चांसलर इसे पारित कर सकते हैं। इसके बाद, अपीलकर्ता को 8 अगस्त, 1962 को चांसलर से इस आशय का एक आदेश प्राप्त हुआ कि धारा के तहत मंजूरी देने की कृपा की गई है। अधिनियम की धारा 4 के

अनुसार आयोग की अनुशंसा पर अपीलार्थी की प्राचार्य पद पर नियुक्ति 30 नवंबर 1962 तक या आयोग द्वारा अनुशंसित अभ्यर्थी के कार्यभार ग्रहण करने तक, जो भी पहले हो, तक की है।

इसके बाद, जैसा कि यह महसूस किया गया कि 18 अगस्त, 1962 के आदेश को इस आधार पर सफलतापूर्वक चुनौती दी जा सकती है कि अपीलकर्ता को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था, आयोग ने अपीलकर्ता को 8 नवंबर, 1962 को कारण बताओ नोटिस दिया और सुनवाई के बाद चांसलर ने 18 फरवरी, 196 को एक और आदेश पारित किया, जिसका उद्देश्य 18 अगस्त, 1962 के आदेश को संशोधित करना था; संशोधन इस आशय का था कि अपीलकर्ता को परीक्षा में बैठने और द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री प्राप्त करने के लिए एक या दो वर्ष का समय दिया जाएगा। जो कि प्रधान पद के लिए न्यूनतम योग्यता थी, जिसके पूरा न होने पर उनकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी। ,.

अपीलकर्ता ने अन्य बातों के साथ-साथ अन्य आधारों पर 18 अगस्त, 1962 और 18 फरवरी, 1963 के दोनों आदेशों को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की; [i] कि विश्वविद्यालय के क़ानून के अध्याय 16 के नियम [1] के उप-नियम [6] के तहत, जो यह प्रदान करता है कि किसी भी अन्य आवश्यकता के बावजूद, पहले से ही सेवा में मौजूद और 1 जुलाई से पहले पुष्टि की गई शिक्षक की योग्यता, 1962, को उस पद के लिए न्यूनतम योग्यता के बराबर माना जाएगा। अपीलकर्ता को एक व्याख्याता के लिए न्यूनतम योग्यता यानी द्वितीय श्रेणी मास्टर की डिग्री के बराबर माना जाना चाहिए और यह मान लिया जाएगा कि जब उसे प्रिंसिपल नियुक्त किया जाएगा तो यह मान लिया जाएगा। या जिसकी न्यूनतम योग्यता कुछ अनुभव के साथ द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री थी; [ii] वह एस. अधिनियम का 4 संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन था। और [iii] कि आदेश ~ 18 अगस्त, 1962 ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया है और इसे 30 नवंबर, 1962 के बाद संशोधित नहीं किया जा सका क्योंकि यह स्वयं ही लागू हो गया था और एस के तहत चांसलर को समीक्षा की कोई शक्ति नहीं दी गई थी। 4. हाईकोर्ट ने याचिका खारिज कर दी ।

इस न्यायालय में अपील पर,

अभिनिर्धारित : अपील की अनुमति,

[i] कुलाधिपति का 18 फरवरी 1963 का आदेश जिसमें अपीलकर्ता को द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री प्राप्त करने के लिए परीक्षा में उपस्थित होने का समय दिया गया था, अन्यथा उसकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी, अमान्य था।

अपीलकर्ता को क़ानून के उप-नियम [6] के आधार पर द्वितीय श्रेणी मास्टर डिग्री की न्यूनतम योग्यता वाला माना जाना चाहिए और इस तरह वह प्रिंसिपल के रूप में नियुक्ति के लिए योग्य था। उप आर. [6] इसे उन शिक्षकों के लिए एक सुरक्षा के रूप में पढ़ा जाना चाहिए, जिन्हें 1 जुलाई 1952 से पहले नियुक्त और स्थायी किया गया था और काल्पनिक रूप से इसने उन्हें न्यूनतम योग्यता दी, भले ही उनके पास वास्तव में यह न हो। इसलिए वह न्यूनतम योग्यता भविष्य के लिए हमेशा उनके पास रहनी चाहिए। क्योंकि यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं था; 1, उसे ले जाया गया था। [241जी-242ए],

[ii] धारा 4 भेदभावपूर्ण और कला का उल्लंघन नहीं था। आईएम संविधान के अनुच्छेद 14 में इस आधार पर कि इसने दो मनमानी तारीखें तय कीं और 27 नवंबर, 1961 से पहले नियुक्त शिक्षकों की तुलना में अलग व्यवहार के साथ इन दो तारीखों के बीच नियुक्त, बर्खास्त आदि शिक्षकों का दौरा किया। संयुक्त चयन समिति की रिपोर्ट की सिफारिश की गई विश्वविद्यालय सेवा आयोग की स्थापना, जिसका प्रभाव संबद्ध कॉलेजों के शासी निकायों की शक्तियों को कम करने पर होगा, 27 नवंबर, 1961 को प्रकाशित किया गया था और 1962 के अधिनियम II के पारित होने के बाद। आयोग के संबंध में 48-ए वास्तव में मार्च 1, 1962 से लागू किया गया था। इस अवधि के दौरान नियुक्तियों, बर्खास्तगी आदि के बारे में कई अनियमितताएं सरकार के ध्यान में लाई गईं और इसके कारण एस अधिनियम बनाया गया। अधिनियम के 4. इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इन दो तिथियों के बीच नियुक्त किए गए शिक्षकों आदि ने एक ऐसा वर्ग नहीं बनाया जिसका प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के साथ कोई संबंध हो। [236बी-एफ]।

इसके अलावा, एस. 4 केवल चांसलर को नियुक्तियों की जांच करने के लिए अधिकृत करता है। स्वयं को संतुष्ट करने के उद्देश्य से इन दो तिथियों के बीच की गई बर्खास्तगी

आदि, कि ये विश्वविद्यालय अधिनियम और क़ानून आदि के अनुसार थे, इस तरह पढ़ें, एस। 4 यह नहीं कहा जा सकता कि कॉन्फ्रेंसिंग ने चांसलर पर शक्ति का प्रयोग किया। [237ए-सीजे. पी]

हालाँकि धारा 4 में आदेश पारित करने से पहले शिक्षक को सुनवाई से छूट देने का कोई प्रावधान नहीं है, इसे इस तरह पढ़ा जाना चाहिए कि आयोग को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करना चाहिए और अपनी सिफारिश करने से पहले संबंधित शिक्षक को सुनना चाहिए। [237 डी-ई]।

[iii] 18 अगस्त 1962 का आदेश तब समाप्त माना जाना चाहिए जब 8 नवंबर 1962 को अपीलकर्ता को नोटिस देने की कार्रवाई की गई और 18 फरवरी 1963 को एक नया आदेश पारित किया गया। बाद वाले आदेश को एक आदेश के रूप में माना जाना चाहिए। नया आदेश जो अपीलकर्ता को सुनने के बाद पारित किया गया था और जो इस आधार पर दोषपूर्ण नहीं था कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है। [238जी]।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1966 की सिविल अपील संख्या 29.

एम.जे.सी. में पटना उच्च न्यायालय के 30 अप्रैल 1964 के फैसले और आदेश के विरुद्ध अपील। 1963 का क्रमांक 498. आर]

अपीलकर्ता की ओर से बी. सी. घोष और के. के. सिन्हा।

एस. प्रतिवादी संख्या 3 के लिए मुस्तफी और ए.के. नाग ।

पी.के.चटर्जी, प्रतिवादी संख्या 4 के लिए।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया -

वांक्बू, मुख्य न्यायमूर्ति .-यह पटना उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए प्रमाणपत्र पर एक अपील है और निम्नलिखित परिस्थितियों में उत्पन्न होती है। 11 वह अपीलकर्ता. जगदीश पांडे, जुलाई 1948 में रामकृष्ण कॉलेज, मधुबनी में व्याख्याता के रूप में शामिल हुए। उनकी नियुक्ति को जून 1949 में विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित किया गया था, और 23 सितंबर, 1951 को उन्हें उस कॉलेज में व्याख्याता के रूप में पुष्टि की गई थी। जुलाई 1961 में पंडौल कॉलेज, पंडौल के प्राचार्य का पद खाली हो गया और विज्ञापन दिया गया। अपीलकर्ता आवेदकों में से एक था और साक्षात्कार के बाद 22 जनवरी, 1962 को कॉलेज के प्रिंसिपल के रूप में नियुक्त किया गया था। 24 जनवरी, 1962 को, कॉलेज के प्रिंसिपल के रूप में अपीलकर्ता की नियुक्ति को विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि नियुक्ति को पटना न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका द्वारा चुनौती दी गई थी, लेकिन वह चुनौती 11 जुलाई 1962 को विफल हो गई, जब याचिका खारिज कर दी गई।

इस बीच, बिहार विधानमंडल ने बिहार राज्य विश्वविद्यालय [बिहार, भागलपुर और रांची विश्वविद्यालय] [संशोधन] अधिनियम, 1962 की संख्या 13 [इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित] पारित किया जो 21 अप्रैल, 1962 को लागू हुआ। उसका 4 निम्नलिखित शब्दों में था:-

> "गैर-सरकारी संबद्ध महाविद्यालयों के शिक्षकों की कुछ नियुक्तियाँ, आदि कुलाधिपति के आदेशों के अधीन होंगी - उक्त अधिनियम या मगध विश्वविद्यालय अधिनियम, 1961 [1962 का बिहार अधिनियम IV] या उसके तहत बनाए गए क़ानूनों में किसी भी बात के बावजूद। या बिहार राज्य विश्वविद्यालय [बिहार, भागलपुर और रांची विश्वविद्यालय] अध्यादेश, 1962, [1962 का बिहार अध्यादेश क्रमांक 1] कॉलेज के किसी भी शिक्षक की, जो संबंधित नहीं है, हर नियुक्ति, बर्खास्तगी, निष्कासन, सेवा की समाप्ति या रैंक में कटौती राज्य सरकार, उक्त अधिनियम या मगध विश्वविद्यालय अधिनियम, 1961 [1962 का बिहार अधिनियम IV] के तहत नवंबर, 1961 के सत्ताईसवें दिन या उसके बाद और मार्च, 1962 के पहले दिन से पहले स्थापित विश्वविद्यालय से संबद्ध है। , ऐसे आदेश के अधीन होगा जो विश्वविद्यालय के कुलाधिपति, उक्त

अधिनियम की धारा 48ए के तहत स्थापित विश्वविद्यालय सेवा आयोग की सिफारिश पर, उसके संबंध में पारित कर सकते हैं।"

यह अधिनियम बिहार राज्य विश्वविद्यालय, बिहार, भागलपुर और रांची विश्वविद्यालय] अधिनियम, संख्या 14, 1960 में संशोधन करने के लिए पारित किया गया था, संशोधन करने का कारण, जैसा कि वस्तुओं और कारणों के विवरण में बताया गया है, यह था। बिहार राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1960 की संख्या 14, 1962 के बिहार अधिनियम II द्वारा संशोधित किया गया था। उसमें 48-ए पेश किया गया। उस धारा में राज्य सरकार से संबंधित नहीं होने वाले संबद्ध महाविद्यालयों के लिए एक विश्वविद्यालय सेवा आयोग [इसके बाद आयोग के रूप में संदर्भित] की स्थापना का प्रावधान था। की उपधारा [6] । 48-ए में प्रावधान है कि "विश्वविद्यालय की मंजूरी के अधीन, राज्य सरकार से संबंधित नहीं होने वाले संबद्ध कॉलेज के शिक्षकों की नियुक्ति, बर्खास्तगी आयोग की सिफारिश पर कॉलेज के शासी निकाय द्वारा की जाएगी।" इसके बाद आयोग की सिफारिश के बिना 48-ए लागू होने के बाद कोई भी नियुक्ति, बर्खास्तगी आदि नहीं की जा सकेगी। यह धारा 1 मार्च 1962 को लागू हुई, लेकिन संयुक्त चयन समिति की रिपोर्ट, जिसके परिणामस्वरूप धारा अधिनियमित हुआ। 48-ए, बी 27 नवंबर, 1961 को बनाया गया था। अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में कहा गया है कि सरकार को कई रिपोर्टें प्राप्त हुई थीं कि संबद्ध कॉलेजों के शासी निकायों ने बहुत बड़ी संख्या में अनावश्यक नियुक्तियां और अनुचित निष्कासन किया था। आयोग द्वारा ऐसे मामलों की जांच से बचने के लिए सेवा से बर्खास्त कर दिया जाएगा। इस स्थिति से निपटने के लिए पहली बार एक अध्यादेश जारी किया गया था, जिसमें 27 नवंबर, 1961 और 1 मार्च के बीच हुई शिक्षकों की नियुक्तियों, बर्खास्तगी, निष्कासन आदि के मामलों को आयोग की जांच के लिए प्रस्तुत करना शासी निकायों के लिए अनिवार्य बना दिया गया था। .1962. इस अधिनियम ने उस अध्यादेश का स्थान ले लिया।

अधिनियम लागू होने के बाद, अपीलकर्ता को विश्वविद्यालय के चांसलर से 18 अगस्त, 1962 को इस आशय का एक आदेश प्राप्त हुआ कि चांसलर ने धारा के तहत इसे मंजूरी देने की कृपा की है। अधिनियम के 4, आयोग की सिफारिश पर अपीलकर्ता की पंडौल कॉलेज के

प्राचार्य के रूप में 30 नवंबर, 1962 तक या आयोग द्वारा अनुशंसित उम्मीदवार के शामिल होने तक, जो भी पहले हो, नियुक्ति की गई।

ऐसा प्रतीत होता है कि इससे पहले, 31 मई, 1962 को रामकृष्ण कॉलेज, मधुबनी के एक अन्य शिक्षक के संबंध में भी इसी तरह का आदेश पारित किया गया था और उस आदेश को इस आधार पर पटना उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी कि संबंधित शिक्षक का पक्ष पहले नहीं सुना गया था। आदेश दिया गया था और इसलिए यह आदेश ख़राब था क्योंकि इसने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया था। उस मामले का फैसला उच्च न्यायालय ने 23 अप्रैल, 1963 को किया था और विचाराधीन आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि इसने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया था। इसके अलावा उस मामले में एस की वैधता। अधिनियम के 4 को भी चुनौती दी गई लेकिन उस प्रश्न पर निर्णय नहीं लिया गया। [पटना का राम कृपालु मिश्र विश्वविद्यालय देखें]

ऐसा लगता है कि अक्टूबर या नवंबर, 1962 में किसी समय यह एहसास हुआ कि अपीलकर्ता के मामले में अगस्त 8, 1962 के आदेश को इसी तरह चुनौती दी जा सकती है; इसलिए 8 नवंबर, 1962 को आयोग ने अपीलकर्ता को कारण बताने के लिए नोटिस दिया। आयोग को कुलाधिपति को यह अनुशंसा क्यों नहीं करनी चाहिए कि 18 अगस्त, 1962 को पारित आदेश को संशोधित करने के लिए कुलाधिपति के पास कोई पर्याप्त औचित्य या कारण नहीं था। यह अपीलकर्ता और कई अन्य शिक्षकों के लिए एक समग्र नोटिस था जिनके मामले में हम नहीं हैं संबंधित। नोटिस का मुख्य भाग विभिन्न आधारों को दर्शाता है जिन पर नोटिस जारी किया गया था, लेकिन यह नहीं बताया गया कि कौन सा विशेष आधार अपीलकर्ता पर लागू होता है। हम कहना होगा कि हमें आयोग से इससे बेहतर नोटिस की उम्मीद करनी चाहिए थी। नोटिस प्रत्येक शिक्षक को अलग-अलग संबोधित किया जाना चाहिए था जिसमें उस विशेष आधार का उल्लेख किया गया था जिस पर उनके खिलाफ नोटिस दिया गया था। हालाँकि, अपीलकर्ता ने नोटिस का जवाब दिया और उसमें उल्लिखित सभी आधारों को खारिज कर दिया, हालाँकि अब यह अंतिम आदेश से प्रतीत होता है जो 18 फरवरी 1963 को पारित किया गया था कि एकमात्र आधार जो उसे चिंतित करता था वह यह था कि वह प्रिंसिपल के रूप में नियुक्ति के लिए शैक्षणिक रूप से योग्य नहीं था। शासी निकाय द्वारा चयन की तिथि पर

कॉलेज की। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता को आयोग द्वारा सुनवाई का मौका दिया गया और अंततः 18 फरवरी, 1963 को चांसलर ने एक और आदेश पारित किया, जिसका उद्देश्य 18 अगस्त, 1962 के आदेश को संशोधित करना था, जहां तक यह अपीलकर्ता से संबंधित था। संशोधन वह था. अपीलकर्ता को परीक्षा में बैठने के लिए एक या दो साल का समय दिया जाएगा ताकि वह द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री प्राप्त कर सके; अन्यथा उनकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी। इसके बाद अपीलकर्ता ने 18 अगस्त, 1962 और 18 फरवरी, 1963 के दोनों आदेशों को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की।

इस संबंध में अपीलकर्ता द्वारा तीन मुख्य आधारों का आग्रह किया गया था। सबसे पहले यह आग्रह किया गया कि एस. अधिनियम का 4 उल्लंघन था, क्योंकि यह कला का उल्लंघन करता था। संविधान के 14. दूसरे, यह था आग्रह किया कि 18 अगस्त, 1962 के आदेश ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया है और इसे 30 नवंबर, 1962 के बाद संशोधित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह स्वयं ही काम कर चुका है और एस के तहत चांसलर को समीक्षा की कोई शक्ति नहीं दी गई है। 4 और आगे यह कि आयोग द्वारा 8 नवंबर, 1962 को जारी नोटिस पर आधारित कार्यवाही 18 अगस्त, 1962 के आदेश की दुर्बलता से उबरने के लिए एक दुर्भावनापूर्ण उपकरण थी। तीसरा, यह आग्रह किया गया था कि अध्याय के मद्देनजर। 16 आर. [!]विश्वविद्यालय के क़ानून के अनुसार, अपीलकर्ता को प्रिंसिपल के पद के लिए न्यूनतम योग्यता वाला माना जाना चाहिए और इसलिए 18 फरवरी, 1963 के आदेश में उसे दूसरी पास मास्टर डिग्री प्राप्त करने के लिए एक परीक्षा में बैठने की आवश्यकता होती है। वैकल्पिक रूप से यह मांग करना कि उसकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएं, बुरा था। चांसलर और यूनिवर्सिटी की ओर से याचिका का विरोध किया गया. उच्च न्यायालय ने सभी तीन तर्कों को खारिज कर दिया और • याचिका खारिज कर दी, लेकिन इस न्यायालय में अपील करने का प्रमाण पत्र दिया; और इस तरह ये मामला हमारे सामने आया है.:-

उच्च न्यायालय में उठाए गए तीन बिंदुओं का समर्थन करते हुए हमारे समक्ष आग्रह किया गया है। अपीलकर्ता का तर्क है कि 18 अगस्त, 1962 और 18 फरवरी, 1963 के दो आदेश रद्द किये जाने योग्य हैं। हम पहले इस पर विचार करेंगे कि क्या एस. 4• अल्ट्रावायर्स कला है. संविधान के 14. इस संबंध में पहला आधार यह है कि जिन तारीखों का उल्लेख किया

गया है। 4 पूरी तरह से मनमाने थे• और इसलिए अनुभाग की वैधता को बनाए रखने के लिए कोई वैध वर्गीकरण नहीं था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि तारीखें मनमानी हैं, तो एस. 4 कला का उल्लंघन होगा. ।4, क्योंकि तब इन तिथियों और आवेदन करने के बीच नियुक्त या बर्खास्त किए गए शिक्षकों के एक वर्ग को अलग करने का कोई औचित्य नहीं होगा। उन्हें 4 जबकि बाकी लोग उस धारा के दायरे से बाहर होंगे। लेकिन हमारी राय है कि तारीखें एस. 4 को मनमाना नहीं कहा जा सकता। हम पहले ही वस्तुओं और कारणों के कथन का उल्लेख कर चुके हैं जो एस के अधिनियमन के कारणों को बताता है। 4. हम उन कारणों पर गौर करने के हकदार हैं कि जब एस. की स्थिति क्या थी। 4. पारित हो गया और क्या उस स्थिति में उसमें निर्दिष्ट दो तिथियों के बीच नियुक्त, बर्खास्त आदि शिक्षकों के लिए विशेष प्रावधान करना उचित होगा। इन दो तारीखों का कारण यह प्रतीत होता है कि आयोग की स्थापना के लिए एक विधेयक, जिसका प्रभाव संबद्ध कॉलेजों के शासी निकायों की शक्तियों को कम करने पर होगा, विधायिका के विचाराधीन था। उस संबंध में संयुक्त चयन समिति की रिपोर्ट 27 नवंबर, 1961 को बनाई गई थी। 19 जनवरी, 1962 और एस को संयुक्त चयन समिति की रिपोर्ट के बाद 1962 का अधिनियम II पारित किया गया था। आयोग के संबंध में 48-ए वास्तव में 1 मार्च, 1962 से लागू किया गया था। उद्देश्यों और कारणों के विवरण से यह भी पता चलता है कि इस अवधि के दौरान नियुक्तियों, बर्खास्तगी आदि में अनियमितताएं सरकार के ध्यान में लाई गई थीं और जिसके कारण एस अधिनियम बनाया गया। विधायिका द्वारा अधिनियम के 4. इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि एस, 4 में ये तारीखें मनमानी हैं। परिस्थितियों को वैसे ही लेते हुए जैसे वे तब थीं। 4 अधिनियमित और लागू होने के बाद, यह नहीं कहा जा सकता कि इन दो तिथियों के बीच नियुक्त किए गए शिक्षकों आदि ने एक ऐसा वर्ग नहीं बनाया, जिसका प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के साथ संबंध हो। इन परिस्थितियों में हमें यह अवश्य मानना चाहिए। 4. इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि उसने दो मनमानी तारीखें तय की हैं और 27 नवंबर, 1961 से पहले नियुक्त शिक्षकों की तुलना में अलग व्यवहार के साथ इन दो तारीखों के बीच नियुक्त, बर्खास्त आदि शिक्षकों का दौरा किया है। [एफ]

एस -4 की वैधता पर अगला हमला. यह है कि यह चांसलर को बिना किसी मानदंड का संकेत दिए बिना विश्लेषित शक्तियां प्रदान करता है जिसके आधार पर एस-4 के तहत शक्ति प्राप्त होती है। व्यायाम किया जा सकता है. इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि कोई एस-4

पढ़ता है। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह कुलाधिपति को आयोग के अंतर्गत आने वाले शिक्षकों के संबंध में आयोग की सिफ़ारिशों पर जो चाहे करने के लिए अलौकिक शक्तियाँ प्रदान करता है। हालाँकि, हमें नहीं लगता कि विधायिका का इरादा कुलाधिपति को ऐसी मनमानी शक्ति देने का था। हमारी राय है कि एस-4 को पढ़ा जाना चाहिए और अगर हम इसे पढ़ते हैं तो यह मानने का कोई कारण नहीं है कि विधायिका चांसलर को नग्न मनमानी शक्ति प्रदान कर रही थी। हमें ऐसा लगता है कि विधायिका की मंशा यह थी कि दो तारीखों के बीच की गई सभी नियुक्तियों, बर्खास्तगी आदि की जांच की जानी चाहिए और जांच इस उद्देश्य के लिए होनी चाहिए कि यह देखा जाए। नियुक्तियाँ, बर्खास्तगी आदि विश्वविद्यालय अधिनियम और क़ानून के अनुसार थीं। योग्यता के मामले में और इन उद्देश्यों के लिए निर्धारित प्रक्रिया के मामले में, इसके तहत बनाए गए अध्यादेश, विनियम और नियम। हमें नहीं लगता कि विधायिका का इरादा इससे अधिक कुछ था जब उसने कुलाधिपति को इन दो तिथियों के बीच की गई नियुक्तियों, बर्खास्तगी आदि की जांच करने की शक्ति दी। इसलिए हमें इस अनुभाग को पढ़ने में कोई झिझक नहीं है और हम मानते हैं कि यह केवल कुलाधिपति को स्वयं को संतुष्ट करने के उद्देश्य से इन दो तिथियों के बीच की गई नियुक्तियों, बर्खास्तगी आदि की जांच करने के लिए अधिकृत करता है कि ये नियुक्तियां, बर्खास्तगी आदि विश्वविद्यालय के अनुसार थीं। अधिनियम और उसके तहत बनाए गए क़ानून, अध्यादेश, विनियम या नियम, उनके मूल और प्रक्रियात्मक दोनों पहलुओं के संबंध में। यदि नियुक्तियाँ आदि विश्वविद्यालय अधिनियम आदि के अनुसार थीं, तो कुलाधिपति उन्हें बरकरार रखेंगे, और यदि वे नहीं थे, तो कुलाधिपति ऐसे आदेश पारित करेंगे जैसा वह उचित समझेंगे। इस तरह पढ़ें, एस. 4 कुलाधिपति को अनियंत्रित शक्ति प्रदान नहीं करता है; इस प्रकार इसे कला के तहत भेदभावपूर्ण मानकर रद्द नहीं किया जा सकता। [14].

फिर यह आग्रह किया गया कि एस-4 में कोई प्रावधान नहीं किया गया था, के तहत आदेश पारित करने से पहले शिक्षक की सुनवाई के लिए। अब एस. 4 में प्रावधान है कि आयोग की अनुशंसा पर कुलाधिपति आदेश पारित करेंगे। हमें यह मानना उचित लगता है कि आयोग सिफारिश करने से पहले प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार संबंधित शिक्षक की बात सुनेगा। हमारे विचार से यह उस अनुभाग में निहित है जब यह प्रावधान किया गया है कि आयोग को कुलाधिपति को एक सिफारिश करनी होगी जिस पर कुलाधिपति आवश्यक आदेश पारित करेंगे।

यदि कोई आदेश एस -4 के तहत पारित किया जाता है। भले ही आयोग की सिफ़ारिश पर, लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना, वह आदेश ख़राब होगा और रद्द किया जा सकता है। बिहार के राम कृपालु मजसरा विश्वविद्यालय में पंता उच्च न्यायालय द्वारा['']। 'लेकिन हमें एस-4 पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती।' यह फिर से शुरू करते हुए कि आयोग को अपनी सिफारिश करने से पहले प्राकृतिक सिद्धांतों के अनुसार संबंधित शिक्षक को नियुक्त करना चाहिए। न्याय। इसलिए अनुभाग को इस तरह से पढ़ना - और यही एकमात्र तरीका है जिससे इसे पढ़ा जा सकता है - हमारी राय है कि इसे कला के तहत हटाया नहीं जा सकता है, संविधान-14 को भेदभावपूर्ण बताया गया है।

फिर आग्रह है कि एस. 4 की सूची द्वारा अनुमोदन प्रदान नहीं किया गया है। चांसलर का आदेश जबकि एस. 48-ए[6] • करता है, और इसलिए यह डी1एससीएनमेट्री है। हमारी राय है कि एस-4. जैसा कि हम पहले ही ऊपर बता चुके हैं, को एक विशेष स्थिति से निपटने के लिए अधिनियमित किया गया था, और उस स्थिति में कुलाधिपति के आदेश को विश्वविद्यालय द्वारा मंजूरी देना बिल्कुल अनुचित होगा, धारा 4 को इस आधार पर भेदभावपूर्ण मानकर रद्द नहीं किया जा सकता है।

इसलिए हम एस-4 पढ़ते हैं। पारित करते समय कुलाधिपति की शक्ति के बारे में ~1 एम-1टी दोनों के ऊपर बताए गए तरीके। इसके तहत आदेश दें और आयोग को सुधार करने से पहले संबंधित शिक्षक को सुनने की आवश्यकता के बारे में बताएं, और इसलिए पढ़ें हमारी राय है कि एस- 4 को भेदभावपूर्ण नहीं माना जा सकता है और इसलिए इसे कला के तहत रद्द किया जा सकता है। [संविधान के 14] .

यह हमें अगले बिंदु पर लाता है, अर्थात्, 18 अगस्त, 1962 का आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है और इसलिए बुरा था। प्रत्यर्थी ओं का यह मामला नहीं है कि उक्त आदेश पारित करने से पहले अपीलकर्ता को सुना गया था, और यदि वह आदेश अपने आप कायम रहता है तो यह बुरा होगा क्योंकि इसे पारित करने और पटना उच्च के निर्णय से पहले अपीलकर्ता को सुनवाई का मौका नहीं दिया गया था। राम कृपालु मिश्र ['] में न्यायालय लागू होगा। इस मामले में जो हुआ वह यह था कि कुछ स्तर पर यह महसूस किया गया कि

अपीलकर्ता के खिलाफ धारा के तहत आदेश पारित करने से पहले उसकी सुनवाई की जानी चाहिए। इसलिए अपीलकर्ता को कारण बताने के लिए 8 नवंबर, 1962 को जारी एक नोटिस पर आयोग द्वारा सुनवाई का मौका दिया गया था। यह सच है कि बाद की कार्यवाही इस रूप में थी मानो वे 18 अगस्त, 1962 के आदेश की समीक्षा या संशोधन के लिए थीं-और यह संदिग्ध है कि क्या एस-4 एक बार आदेश पारित होने के बाद उसकी समीक्षा का प्रावधान करता है। हमें ऐसा लगता है कि वास्तव में जो हुआ वह यह था कि 18 अगस्त, 1962 के आदेश को तब प्रभावी नहीं किया गया जब यह महसूस किया गया कि यह अवैध हो सकता है और उसके बाद अपीलकर्ता को नोटिस देने और आदेश पारित करने से पहले सुनवाई करने की कार्रवाई की गई। एस के तहत 4. यहां भी 18 फरवरी, 1963 का आदेश 18 अगस्त, 1962 के आदेश को संशोधित करने वाले आदेश के रूप में है, लेकिन संक्षेप में इसे ताजा माना जाना चाहिए। एस-4 के तहत आदेश , अपीलकर्ता को आयोग के समक्ष अपना मामला प्रस्तुत करने का अवसर देने के बाद, पर आदेश दिया गया इसलिए 18 फरवरी, 1963 को यह नहीं कहा जा सकता कि यह उस दोष से ग्रस्त है कि इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना पारित किया गया था। जहां तक 18 अगस्त, 1962 के आदेश की बात है, इसे तब समाप्त माना जाना चाहिए जब 8 नवंबर, 1962 को अपीलकर्ता को नोटिस देने और उचित सुनवाई के बाद 18 फरवरी, 1963 को एक नया आदेश पारित करने की कार्रवाई की गई थी। इन परिस्थितियों में 18 अगस्त, 1962 के आदेश को रद्द करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि यह तब गिरा जब अपीलकर्ता को नोटिस के बाद आगे की कार्यवाही की गई। इसके अलावा 18 फरवरी, 1963 के आदेश के संबंध में इसे एक नया आदेश माना जाना चाहिए और चूंकि यह इस आधार पर दोषपूर्ण नहीं है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है, इसलिए इसे इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है।

यह हमें अपीलकर्ता की ओर से उठाए गए अंतिम विवाद पर लाता है। 18 फरवरी, 1963 के आदेश से पता चलता है कि पंडौल कॉलेज के प्रिंसिपल के रूप में अपीलकर्ता की नियुक्ति में एकमात्र दोष यह पाया गया था कि वह 'द्वितीय श्रेणी का एम.ए. नहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि अध्याय 16 के अनुसार, आर. [1] क़ानून के अनुसार, प्रिंसिपल की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री और किसी कॉलेज में कम से कम दस साल

का शिक्षण अनुभव है, जिसमें से कम से कम सात डिग्री कॉलेज में होना चाहिए या पांच साल का अनुभव होना चाहिए। एक इंटरमीडिएट कॉलेज के प्राचार्य के रूप में। इसमें कोई विवाद नहीं है कि आप अपीलकर्ता बनें, किस कॉलेज में दस साल का शिक्षण अनुभव था? वर्ष एक डिग्री कॉलेज में थे। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है!बल्ला। अपीलकर्ता के पास तीसरी श्रेणी की मास्टर डिग्री थी और इसलिए वह योग्यता को पूरा नहीं करता था!बल्ला, एक प्रिंसिपल के पास दूसरी श्रेणी की मास्टर डिग्री होनी चाहिए। अपीलकर्ता उप-आर पर निर्भर है। [6] आर के. [!]जो इन शब्दों में है:-

> "अनुच्छेद में किसी भी बात के बावजूद, पहले से ही सेवा में मौजूद शिक्षक की योग्यता और जुलाई 1952 से पहले पुष्टि की गई योग्यता को उसके पद के लिए न्यूनतम योग्यता के बराबर माना जाएगा।"

अपीलकर्ता की पुष्टि जुलाई 1, 1952 से पहले कर दी गई थी। इसलिए उसकी ओर से यह तर्क दिया गया है कि उप-आर के मद्देनजर। [6]. उसे व्याख्याता के लिए न्यूनतम योग्यता वाला माना जाना चाहिए, जो कि उप-आर के अनुसार है। [1] द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री है। एक बार इसलिए इसे उप-आर के तहत माना जाता है। [6] कि उनके पास द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री थी, इसका मतलब यह है कि जब उन्हें प्रिंसिपल नियुक्त किया जाता है तो यह मान्यता जारी रहनी चाहिए, जिसके लिए न्यूनतम योग्यता कुछ अनुभव के साथ द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री है। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने उस उप-आर. [6] इसका मतलब केवल यह होगा कि अपीलकर्ता के पास रामकृष्ण कॉलेज में व्याख्याता के पद के लिए द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री थी और उस उप-नियम का मतलब पंडौल के प्रिंसिपल के रूप में नियुक्ति के लिए नहीं हो सकता है। अपीलकर्ता को कॉलेज,समझा जाएगा ।

द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री प्राप्त करना। इसलिए उच्च न्यायालय ने माना कि चूंकि अपीलकर्ता प्रिंसिपल पद के लिए न्यूनतम योग्यता पूरी नहीं करता था, इसलिए उसकी नियुक्ति अनियमित थी।

क़ानून के तहत और कुलाधिपति के पास ऐसे आदेश देने की शक्ति होगी जैसा वह एस-4 के तहत उचित समझे।

हम उप-आर के इस निर्माण को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। [6]. क़ानून के अध्याय 16 का नियम [I] शिक्षकों के ग्रेड, वेतनमान और योग्यताओं का प्रावधान करता है। यह उप-नियम प्रचालन में संभावित है, जिसका अर्थ है कि भविष्य में नियुक्तियों के लिए इसके तहत न्यूनतम योग्यता की आवश्यकता होगी। इसके अलावा क़ानून में हमारे ध्यान में ऐसा कुछ भी नहीं लाया गया है जिससे यह पता चले कि 1 जुलाई 1952 से पहले नियुक्त शिक्षक उत्तरदायी होंगे। उन्हें इस आधार पर हटा दिया गया कि उनके पास न्यूनतम योग्यता नहीं थी। इसका मतलब है !बैट सब-आर। [6] यह आवश्यक नहीं था कि 1 जुलाई 1952 से पहले नियुक्त और स्थायी किए गए शिक्षक, जो उस समय निर्धारित न्यूनतम योग्यताएं पूरी नहीं करते थे, सेवा में बने रहें। जाहिर है कि वे शिक्षक बिना सब-आर के भी सेवा में बने रहेंगे। [6]. अत: उच्च न्यायालय का विचार है कि उप-आर. [6] न्यूनतम योग्यता से कम योग्यता वाले शिक्षकों को उनके वास्तविक पद पर बने रहने की अनुमति देने के उद्देश्य से बनाया गया था। क़ानून पारित किए जाने के समय आयोजित की गई बातों को स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि सब-आर का यही इरादा था। [6], हमें इसकी भाषा बहुत अलग लगी होगी, इसमें यह प्रावधान किया गया होगा कि 1 जुलाई 1952 से पहले से ही सेवा में मौजूद और पुष्टि किए गए शिक्षक अपने वर्तमान पदों पर बने रहेंगे, भले ही वे न्यूनतम योग्यताएं पूरी नहीं करते हों। लेकिन उप-र की भाषा. [6] बहुत अलग है। यह एक गैर-विवादास्पद खंड से शुरू होता है और वास्तव में कहता है कि 1 जुलाई, 1952 से पहले नियुक्त और पुष्टि किए गए शिक्षक की वास्तविक योग्यता जो भी हो, वह योग्यता• उसके पद के लिए न्यूनतम योग्यता के बराबर मानी जाएगी। शब्द "उस पद के लिए जो वह धारण करता है" केवल वर्णनात्मक है और इसका अर्थ यह है कि यदि कोई व्यक्ति व्याख्याता का पद धारण करता है, तो उसकी वास्तविक योग्यता व्याख्याता की न्यूनतम योग्यता के बराबर मानी जाएगी; यदि वह प्रधानाचार्य का पद धारण करता है, तो उसकी वास्तविक योग्यता प्रधानाचार्य के पद के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यता के बराबर मानी जाएगी, भले ही इनमें से किसी भी मामले में वास्तविक योग्यता न्यूनतम योग्यता से कम हो। उप-आर के पीछे स्पष्ट इरादा. [6] 1 जुलाई 1952 से पहले नियुक्त और पुष्टि किए गए शिक्षकों के हितों की रक्षा

करना था, और यही कारण है कि हमें ऐसी भाषा मिलती है जो यह बताती है कि भले ही वास्तविक योग्यता न्यूनतम से कम हो, उसे समकक्ष माना जाएगा। न्यूनतम। एक बार वह तुल्यता उप-आर द्वारा स्थापित हो जाती है। [6], और यह माना जाता है कि भले ही वास्तविक योग्यता कम थी, यह उप-आर द्वारा प्रदान की गई न्यूनतम योग्यता के बराबर थी। [1], हम यह देखने में असफल हैं कि आगे पदोन्नति या नियुक्ति के मामले में उस मान्य योग्यता को कैसे नजरअंदाज किया जा सकता है। अपीलकर्ता रामकृष्ण कॉलेज में व्याख्याता था, और यद्यपि उसके पास केवल तृतीय श्रेणी मास्टर डिग्री, सब-आर थी। [6] बशर्ते कि तृतीय श्रेणी मास्टर डिग्री को व्याख्याता पद के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यता यानी द्वितीय श्रेणी मास्टर डिग्री के बराबर माना जाना चाहिए। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि उप-नियम लागू होने की तारीख से, अपीलकर्ता, हालांकि उसके पास वास्तव में तीसरी श्रेणी की मास्टर डिग्री थी, उसके पास दूसरी श्रेणी की मास्टर डिग्री मानी जानी चाहिए, जो व्याख्याता के लिए न्यूनतम योग्यता थी। श्रेणी। क़ानून में हमें ऐसा कुछ भी नहीं बताया गया है जो इसके बाद इस मान्य योग्यता को छीन लेगा। इसलिए हम उच्च न्यायालय से सहमत नहीं हो सकते कि जब उप-आर. [6] कहता है कि 1 जुलाई 1952 से पहले नियुक्त और स्थायी किए गए शिक्षक को न्यूनतम योग्यता वाला माना जाएगा - हालांकि वास्तव में उसके पास यह नहीं है - अगर यह केवल तब तक के लिए प्रदान किया जाता है जब तक वह उस विशेष पद पर है जिस पर वह था। क़ानून लागू होने की तिथि पर. हमारी राय में यह "जिस पद पर वह है" शब्दों का प्रभाव नहीं है, क्योंकि ये शब्द केवल वर्णनात्मक हैं और इनका होना आवश्यक है क्योंकि आर में प्रावधान है। [I] [!] तीन श्रेणियों को संदर्भित किया गया है, अर्थात् व्याख्याता, प्रोफेसर, अन्य और प्रिंसिपल। इस संबंध में हम उप-आर का संदर्भ ले सकते हैं। [5]• जो दर्शाता है कि भले ही भविष्य में न्यूनतम योग्यता वाले उम्मीदवार उपलब्ध न हों, सिंडिकेट न्यूनतम योग्यता में छूट दे सकता है, इस प्रकार यह दर्शाता है कि न्यूनतम योग्यता बिल्कुल कठोर नहीं है। लेकिन इसके अलावा हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उप-आर. [6] 1 जुलाई 1952 से पहले नियुक्त और स्थायी किए गए शिक्षकों की सुरक्षा के लिए बनाया गया था और इस प्रावधान द्वारा उन्हें न्यूनतम योग्यता दी गई थी और यदि ऐसा था तो यह भविष्य में सभी उद्देश्यों के लिए होना चाहिए। .•यदि यह उप-आर की व्याख्या नहीं होती। [6] <मदर जिज्ञासु परिणाम तब तक आएगा जब तक कि एक व्याख्याता को कॉलेज प्रोफेसर नियुक्त किया जा सकता है, जिसके लिए द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री को उप-आर के तहत न्यूनतम योग्यता नहीं बनाया गया था। [मैं] लेकिन प्रत्यर्थी

ओं की ओर से हमारे सामने रखी गई व्याख्या के आधार पर उन्हें प्रिंसिपल नियुक्त नहीं किया जा सका। हमें यह होना चाहिए था कि एक प्रोफेसर के मामले में, जिसका मुख्य कार्य शिक्षण है, एक अच्छी डिग्री अधिक आवश्यक होगी, न कि एक प्रिंसिपल के मामले में, जिसका मुख्य कार्य प्रशासनिक है। हालाँकि ऐसा हो सकता है, हमारी राय है कि उप-आर. [6] उन शिक्षकों की सुरक्षा के लिए है, जिन्हें 1 जुलाई 1952 से पहले नियुक्त और स्थायी किया गया था और यह उन्हें अपने प्रावधान के तहत एक योग्यता प्रदान करता है और भविष्य में पदोन्नति या नियुक्ति के प्रयोजन के लिए दूसरे कॉलेज में उच्च ग्रेड के लिए उन्हें हर समय लाभ सुनिश्चित करना चाहिए। ।

यदि उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार की गई व्याख्या सही है तो एक और दिलचस्प परिणाम सामने आएगा। जैसा कि हमने ऊपर बताया है, उच्च न्यायालय ने उस उप-आर को माना है। [6] 1 जुलाई 1952 से पहले नियुक्त और पुष्टि किए गए शिक्षक द्वारा धारित विशेष पद के लिए ही समकक्षता दें। मान लीजिए कि एक कॉलेज में एक व्याख्याता जिसके पास तृतीय श्रेणी की मास्टर डिग्री है और वह उस कॉलेज में व्याख्याता के रूप में बने रहने का हकदार है, परिनियम लागू होने के बाद कुछ कारणों से दूसरे कॉलेज में नियुक्त किया जाता है। यह एक नई नियुक्ति होगी और ऐसे व्याख्याता को किसी नए कॉलेज में नियुक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि नई नियुक्ति के लिए उसके पास द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री नहीं होगी। इसलिए हमें ऐसा लगता है. उप-आर का इरादा. [6] नहीं था। कि वास्तव में धारित पद विशेष के प्रयोजन के लिए समतुल्यता अब और प्रभावी नहीं रहेगी। हमारी राय है कि उप-आर. [6] इसे उन शिक्षकों के लिए एक सुरक्षा के रूप में पढ़ा जाना चाहिए जिन्हें 1 जुलाई 1952 को नियुक्त और स्थायी किया गया था और काल्पनिक रूप से इसमें न्यूनतम योग्यता दी गई थी, भले ही उनके पास वास्तव में न हो। यह। इसलिए वह न्यूनतम योग्यता भविष्य में हमेशा उनके पास ही रहेगी, क्योंकि हमारे ध्यान में ऐसा कुछ भी नहीं लाया गया है जो उप-नियम [6] द्वारा शिक्षकों को प्रदान की गई न्यूनतम योग्यता को छीनता हो। इसलिए हमारी राय है कि चांसलर द्वारा 1 फरवरी 1963 को पारित आदेश में पंडौल कॉलेज के जेआई गवर्निंग बॉडी को अपीलकर्ता को परीक्षा में बैठने के लिए एक या दो साल का समय देने की आवश्यकता थी ताकि वह एक ~ डी क्लास 15 की मास्टर डिग्री प्राप्त कर सके। डिग्री। अन्यथा उसकी सेवाएँ लिड" नहीं हैं, ~या अपीलकर्ता को न्यूनतम योग्यता के लिए समझा जाना चाहिए: उप-नियम [6] के

आधार पर द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री क़ानून और इस तरह वह पंडौल कॉलेज के प्राचार्य के रूप में नियुक्ति के लिए योग्य थे।

इसलिए हम अपील की अनुमति देते हैं, उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हैं और याचिका को अपीलकर्ता के संबंध में 18 फरवरी, 1963 के चांसलर के आदेश को रद्द करने की अनुमति देते हैं। अपीलकर्ता को प्रतिवादी विश्वविद्यालय से उसकी लागत प्राप्त होगी:

अपील की अनुमति.

आर.के.पी.एस.

चंद्रकांत शुक्ल की देखरेख में शशिप्रभा द्वारा अनुवादित।